ओ३म्

ट्रेक्ट नम्बर ५

# अविद्या का प्रथम अंग

जिसको

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती जी ने रचा और

प्रबन्धकर्त्ता दयानन्द ट्रैक्ट सोसाइटी ने

महाविद्यालय मैशीन प्रेस ज्वालापुर में छपवाया.

मिलने का पता—

दयानन्द ट्रैक्टसोसाइटी

(दफ्तर) पुलिस के सामने

बाजार हरिद्वार.

४००० प्रति ] [ मूल्य ३ पाई.

॥ ओ३म् ॥

# अविद्या का प्रथम अंग ।

विद्यांञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयꣳसह ।
अविद्यया मृत्युंतीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥

प्यारे भ्रातृ वर्ग इस वेद मन्त्र में परमात्मा जीवों को इस बात का उपदेश देते हैं कि जो जीव अविद्या और विद्या अर्थात् दुःख और सुख के कारण को एक समय में जानता है वह अविद्या के ज्ञान से मृत्यु को तरकर विद्याके ज्ञान से अमृत अर्थात् मोक्ष (निजात) को प्राप्त करता है। अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि अविद्या जो दुःख का कारण है वह क्या वस्तु है, इसका लक्षण महात्मा पतञ्जलि ऋषि ने यह किया हैकि—

अनित्याऽशुचिदुःखाऽनात्मसुनित्या ।
शुचि सुखात्मख्यातिर विद्या॥ यो० पा०

अर्थ अनित्य पदार्थों को नित्य जानना अविद्या का प्रथम लक्षण है जैसे यह शरीर नाश वाला है अथवा यह जगत् जो विनाश वाला है, इसको सर्वदा स्थिर रहने वाला मानना अविद्या है क्यों कि यदि जीव इस शरीर को नित्य (अस्थी) न जाने तो उस के पालने के वास्ते बडे २ पाप कभी न करे अस्तु जिस मनुष्य को यह निश्चय होजाता है कि मैं ऐसी सराय में ठैरा हूं कि जिस में पता नहीं कि किस समय स्वामी मुझे निकल जाने की आज्ञा देदे तो उस में वह मनुष्य ज़ास्ती सामान इकट्ठा करने का श्रम नहीं करता और नहीं मनुष्यों से प्रीति बढाता है क्यों कि संसार के सम्पूर्ण कार्य आशा के सहारे पर होते हैं. जब आशा की निवृत्ति हुई तब वहां कार्य कोई नहीं करसक्ता जब तक मनुष्य को यह आशा रहती है कि यह लड़के और स्त्री मुझे सुख देंगे तब ही तक वह लाखों प्रकार के असत्य वाक्य (झूठ) बोलकर और विश्वास घात करके रुपया इकट्ठा करता है यदि उसको इस श्लोक पर विश्वास होता तो वह कार्य नहीं करसकता जैसे एक कवीर ने कहा है॥

अनित्यानिशरीराणीविभवोनैव शाश्वतः।
नित्यंसन्निहितोमृत्युःकर्तव्योधर्म संग्रहः॥

अर्थात् यह शरीर सर्वदा रहने वाला नहीं क्यों कि हमारे

प्राचीन ऋषि हमारे सामने इस जगत् से चले गए हैं हमारे माता पिता और भाई भी यहां से चल दिये हैं शेष भी चले जारहे हैं, पुनः किस प्रकार आशा होसकती है कि यह हमारा शरीर सर्वदा रहने वाला है. यदि नहीं तो इसके वास्ते आत्मा के बल को नाश करने से क्या लाभ है जब ऋषी मुनी और देवताओंके शरीर ही स्थिर न रहे तो हमको अपने शरीर के नित्य रहने की आशा रखना सरासर अविद्या के वश में वास करना है, यह प्राकृत पदार्थ धनादि भी (हमेशा) सर्वदा रहने वाले नहीं हैं लाखों राजा महाराजा इस पृथ्वी परसे चलेगए और प्रत्येक की बुद्धि में यह निश्चय होगया था कि मैं इस संसार का राज्य भोगने के वास्ते हूं और मैं इस जगत् का स्वामी (मालिक) हूं और संसार के सारे पदार्थ मेरे भोग के वास्ते हैं परन्तु आज उनका नाम निशान भी दृष्टि गोचर नहीं होता इतनाही नहीं औरंगजेब जैसे बादशाहों की खबरों का भी पता नहीं मिलता. वह जगत् को तो विचारे क्या भोगते-किन्तु आपही भोगेगए.. संसार की वैसो की वैसी संपूर्ण वस्तु स्थित हैं. परन्तु वह जगत् को अपना मानने वाले नहीं रहे-

न ही आज दुनिया में कोई उनकी प्रतिष्ठा है कारूं ने लक्षों कोस (खजाने) इकट्ठे किए परन्तु आज नतो कारूं का पता मिलता है और ना उनके वह कोश दीखते हैं जब कि कारूं जैसे मनुष्यों के साथ धनादिक संसारिक पदार्थों ने मित्रता

छोडदी तो आजकल छोटे २ राजे रईस बनिये-सेट साहूकार दो चार लाख के विश्वास से संपूर्ण ऐश्वर्यता को तुच्छ समझते हैं-इससे क्या आशा रखसके हैं—जिन नव युवकों (नौ जवानों) की बुद्धि में धनादिक सांसारिक पदार्थ सबसे प्यारे हैं उनको चाहिये कि वह अपने दादा परदादा की अवस्था पर विचार करें-कि उनके साथ इस माया ने (दौलत ने) कैसा वर्ताव किया जिस माया को उसने हजारों पाप करके उत्पन्न किया था इस मरते समय उनको कुछ लाभ नहीं पहुंचासकती है दूर मत जाओ इस देहली की अवस्था पर विचार करो—कि एक समय यह देहली इन्द्र प्रस्थ के नाम से प्रसिद्ध (मशहूर) थी-युधिष्ठिर जैसा धर्मात्मा यहां राज्य करता था जिसके अर्जुन जैसे तीरअन्दाज भ्राता थे अभिमन्यु जैसे बलवान भतीजे थे-भीमसेन जैसे बलवान गदाधारी योद्धा जो कटिबद्ध होकर उसके पसीने के स्थान में अपना रक्त [ खून ] बहाने को तयार रहते थे कृष्ण जैसे योगीराज उनकी सहायता के लिये कटिबद्ध थे वह युधिष्ठिर जिसने राजसू यज्ञ किया संपूर्ण संसार के राजाओं पर राज्य किया फिरंग [ यूरूप ] पाताल [ अमरीका ] और एशिया के कुल मुल्कों के विराट होते हुवे अपना सिक्का चलाया जिसका वर्णन विस्तार पूर्वक महाभारत में किया है जिसने अश्वमेध यज्ञ किया जिसकी आज्ञा में लाखों मनुष्यों की सेना रही अर्थात् बहुतसी अक्षौहिणी सेना रहती थी

बड़े २ महारथी और शस्त्रधारी जिसके भ्राता हों। भला आज कोई बतासका है कि देहली में उसका कोई चिन्ह मिलता है आज एक छोटासा मनुष्य भी उसकी आज्ञा को नहीं मानता किन्तु कोई भी नहीं जानता कि युधिष्ठिर का गृह देहली के किस महल्ले में था युधिष्ठिर के पीछे बहुत से राजे महाराजे हुवे जिन्हों ने इसको अपना समझा परन्तु यह देहली किसी की नहीं हुई युधिष्ठिर ने कौरवों से लड़ाई की संपूर्ण वंश का नाश किया हा ! आर्यावर्त्त के भीष्मपितामह जैसे उसकी सहायता के लिये मारे [ कतल किये ] गए, द्रोणाचार्य जैसे शस्त्र विद्या के गुरु मारेगए परन्तु क्या देहली युधिष्ठिर की हुई नहीं जिस युधिष्ठिर ने देहली के लिये इतना श्रम उठाकर ... रक्त [ खून ] बहाकर बड़े २ दुःख उठाए सारे वंश का नाश किया परन्तु इतने पर भी देहली उसकी न हुई भला जब इतनी आपत्तियों के उठाने से भी देहली युधिष्ठिर की नहीं हुई तो उसके आदर्शों [ जानशीनों ] को उससे क्या आशा हो ... थी सब राजे नम्बरवार देहली को अपना २ कहते हुवे चलेगए परन्तु यह किसी की नो हुई किसी मूर्ख को यह स्मरण न हुवा कि संसार तो आज तक किसी का हुवा ही नहीं पुनः हम उसमें अपना अहंकार रखकर उसके वास्ते वंश का नाश करने का कलंक क्यों लें यदि वंश को जगत् के अन्दर होने से उसकी कुछ परवाह न करो तो धर्म का क्यों नाश करे हो ! अविद्या तेरी महिमा अपार है जब युधिष्ठिर जैसे सभ्य पुरुषों

(को) तैने फसालिया तो आजकल के निर्बुद्धि मनुष्यों का तो कहना ही क्या है केवल युधिष्ठिर ही तेरे जाल में नहीं फँसा किन्तु उसके संपूर्ण अनुयाई तेरी भृत्यता [ गुलामी ] का भार शिरपर लेकर चलेगा कुछ कालान्तर के पश्चात् महाराजा पृथ्वीराज इस देहली के मालिक हुवे जिन्होंने क्षत्रियधर्म के अनुसार राज्य किया धर्मवीर पृथ्वीराज भी कुछ दिवस पर्यन्त देहली को अपना कहता रहा परन्तु उसकी ना हुई अपने भ्राता जयचन्द्र से युद्ध में विजय पाकर हजारों शूर वीरों के शिर कटाकर भी देहली पृथ्वीराज की न रही।

सुमेरसिंह वाली चित्तौर ने जो भारत के शूरवीरों में शिरोमणि था, बहुत कुछ प्रयत्न किया यहां तक कि अपने प्राण भी इसकी रक्षा में समाप्त किये. परन्तु क्या देहली पृथ्वीराज की ही नहीं, कुँवर कल्याणसिंह जैसे सिंह ने बहुत कुछ श्रम किये परन्तु सब निष्फल हुवे. यहां तक कि शहाबउद्दीन मुहम्मद गोरी को प्रथमवार पराजय किया जिस देहली के लिए विजयसिंह ने पृथ्वीराज का विश्वास घात किया। कुँवर कल्याणसिंह को धोके से मारडाला संपूर्ण क्षत्रिय सेना को मिटाकर आर्यावर्त्त ( हिंदुस्तान ) को यवनों का सेवक बनाया, क्या वह दिल्ली विजयसिंह की हुई नहीं जी—जिस शहाब उद्दीन मुहम्मद गोरी ने लाखों मनुष्यों के रक्त बहाकर पृथ्वीराज को छल और कपटों से विजय करके अपनी संपूर्ण प्रतिज्ञा

को भंगकर धर्म की परवाह नहीं की, अपश्चिमवत्- ( लामज हबों की तरह ) राक्षसता का झण्डा उठाया क्या देहली उस की हुवी नहीं जब कि यह देहली इतने २ कष्टों से भी अपनी नहीं हुवी तो अब जो मनुष्य थोड़े वित्त होने पर अहंकारी बन बैठते हैं और पाप से रुपया कमाने पर कटिबद्ध होजाते हैं, परन्तु उनको स्मरण रहे कि संसार की संपूर्ण वस्तु चलती फिरती छाया है आज किसी की कल किसी की मौत दिवस प्रति दिवस समीप आती जाती है माता पिता समझते हैं कि हमारे पुत्रकी आयु बढ़ती है परन्तु यह उनका विचार मिथ्या है, क्योंकि रात दिन रूपी दो चूहे हैं जो मनुष्यों की आयुरूपी रस्सी को निरन्तर काटते जारहे हैं, निशा दिवस के चक्र में मनुष्यों की आयु घटती हुई ज्ञात नहीं होती-मृत्यु मनुष्य की आयु का नाश इस प्रकार करता हुवा चला जाता है जिस प्रकार रोशनी अन्धेरे को—परन्तु जो मनुष्य मृत्यु से भय करता है उसको संसार के विषय दुःख नहीं देसकते हैं परन्तु जिसको मृत्यु का भय नहीं है उसको पाप की भयंकर रूप आत्मा अपने वशीभूत रखती है पाप से वही मनुष्य बचसक्ता है, जो मृत्यु को प्रत्येक समय शिर पर खड़ी देखता है जो मौत को भूलजाते हैं वह अपनी हानि कर बैठते हैं अपनी मौत को प्रत्येक समय स्मरण रखना चाहिये इसही से सम्बन्ध रखने वाला एक दृष्टान्त भी है।

# कथा.

एक समय किसी कामी राजा ने किसी विद्वान वैद्य को आज्ञादी कि हमारे वास्ते एक ऐसी औषधी तयार करदो कि जिसके सेवन से रात्रीभर काम से अवकाश न मिले यथा तो ऐसे ही राजा महाराजा नवाब और रईसों की मौज के लिये करते हैं।

उन्हों ने ऐसी ही औषधी तयार करदी और जिस समय वह औषधी राजा की सेवा में भेजी तो राजा जी आनन्दको प्राप्त होते हुवे भृत्य को आज्ञा दी कि इसको बाग में लेजाकर गुरुजी की सेवा में रक्खो भृत्यने ऐसाही किया. गुरुजी इस औषधी को ठीक तो जानते ही नहीं थे कि इस के क्या गुण और अवगुण हैं, उन्हों ने समझा कि राजा जी ने कुछ उत्तम ही वस्तु भेजी होगी झट दो तीन तोला खागये और भृत्य को आज्ञा दी कि जाओ, नौकर वापिस डिब्बा लेकर आया और संपूर्ण वृत्तान्त वर्णन किया राजा ने उस समय तो श्रवण करके मौन धारण किया और रात्री को वैद्य की आज्ञानुसार एक रत्ती खाई और रात्री के अन्तिम समय पर्यंत कामकी पूर्ति नहीं हुई जब प्रातः काल उठे तो स्मरण आया कि मैंने तो एक रत्ती ही खाई थी जब मेरी यह गती हुई और गुरुजी की

मालूम क्या गति हुई होगी यही मनमें सोचकर बाग में जाय-हुवे देखा तो गुरुजी उसी प्रकार समाधी में बैठे हुवे हैं महा-राजा देखकर गहरे विचार में गिरा कि यह क्या बात है,

जिस काम वृद्धी औषधी (माजून) ने मेरा यह हाल किया उस ने गुरुजी पर कुछ भी असर न किया—

इतने में गुरु जी की समाधी खुली । देखा कि महाराजा गहरे विचार में गिरेहुवे हैं पूछा कि क्या सोच रहे हो महाराजा ने कर बान्ध कर कहा कि महाराज अपराध क्षमा करें तो कुछ जिव्हा से शब्द निकालू महाराज गुरुजी बोले कि निर्भय जो तुम्हारे मनमें हो सो कहो महाराजा ने कहा कि महाराज मेरे मन में एक शंका उत्पन्न हुई है आप इस का उत्तर देकर मेरे दुःख दूर करें गुरुजी ने कहा पूछो—

राजाने कि महाराज मैंने जो कल आपकी सेवा में कामवर्धक औषधी भेजी थी आपने उस में से तोलेसे जास्ती खाई थी और मैंने एक रत्ती परन्तु जबभी मुझ से सम्पूर्ण रात्री में पूर्ती नहीं हुई और पर उस का कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ इस का क्या कारण है सन्यासी ने कहा कि पुनः किसी रोज बतलायेंगे, परन्तु तुम आज दो मजदूर बुला कर इस बाग में रक्खो और उन को अच्छे उत्तम वस्त्र पहना कर इस कोठीको सजा कर और सुन्दर स्त्री वास्ते भोग के और प्रत्येक उत्तम सामान

उन को दिया जावे और प्रत्येक दिवस उनको जिस वस्तु की आवश्यकता हो वही भेज दो—महाराजाने कहा जैसी आपकी आज्ञा है वैसाही किया जावे— राजाजीने नौकरों को आज्ञा दी कि दो मजदूर नगर में से पकड कर बागमें लेजाओ और नजर बन्द रक्खो और कुल सामान उनको देदो नौकरोंने वैसाही किया जब वह दोनों मनुष्य खा पी कर अच्छे प्रकार पुष्ट होगये और श्रम से मोक्ष हुवे तो काम देवने आपना जाल फैलाया अब जब उनसे पूछा जाता कि क्या चाहिये तो उत्तर में कहा जाता कि स्त्री—जब दश पन्द्रह दिवस उनको स्त्री मांगते हुवे होगये तो राजा जी ने गुरु जीके समीप जाकर कहा कि महाराज अब तो वह मनुष्य केवल स्त्री ही स्त्री पुकारते हैं— ।

अच्छा तो नगर में मनादि करादो कि वह दो मनुष्य जो पाले गयेथे कलको बलिदान किए जांवेगे परन्तु मनादी इस ढंगसे कराओ कि वह भी सुन लेवें—और रात्री को दो रत्ती औषधी देदो—और दो सुन्दर स्त्री भी भेजदो और जो कुछ वह कहें उसका मुझे समाचार दो श्री राजा जीने सम्पूर्ण कार्य्य वैसाही किया जब उन मजदूरों ने सुना कि कलहम बलिदान किएजावेंगेतोमनमेंविचारा किहमजो राजाने निष्प्रयोजन उत्तम२ भोजन वस्त्र दिये हैं उस का केवल बलिदान देनेके और कोई अर्थ नहीं है उस का कारण भी तो और नहीं दीखता है अस्तु कल निश्चय मौत के भक्ष बनेंगे और उन स्त्रीयों ने बार बार इच्छा प्रगट की

कि किसी प्रकार हमारी तरफ ध्यान दें परन्तु उनको ध्यान में भी नहीं आया कि हमारे पास और भी कोई है या नहीं उन्होने आ कर राजा जीसे कहा महाराज वह तो नपुन्सक है महराज चकराया कि यदि यह नपुन्सक होते तो नार स्त्री की इच्छा क्यों प्रकट करते—महाराजा ने सम्पूर्ण वृतान्त गुरुजी ने उत्तर दिया कि वह नपुन्सक नहीं किन्तु आपने जो उनको मौत का भय दिलाया था उस ने उनको नपुन्सक बनादिया है यद्यपी इतनी इच्छा होने पर उन्होने ध्यान नहीं दिया अब तू अपने प्रश्न का उत्तर सुन जिस मृत्यु के भयने ऊनको नपुन्सक बनादिया जो गत दिन काम की चेष्टा करते थे यद्यपि उनको सम्पूण रात्री को जीने की आशा थी परन्तु मुझे तो एक पल के जीने की आशा नहीं है भला हमें पुनः यह कामदेव किस प्रकार होसक्ताहै हमारे पाठकगण समझ गए होंगे कि मृत्यु का भय कितनाबळवान है कि मनुष्यों को पापों से तत्काल बचासक्ता है यह केवल शरीर की अनित्य जानने काही फल है अर्थात् अविद्या की के प्रथम अंग को जानने से मनुष्य पापों से बच सकता है उस मनुष्य की दशा का ढंग हीं पलट जाता है यह एक ऐसी बात है कि जिसकी बुद्धि में बैठजाती है उसकी दशा ही पलटा खाजाती है, मृत्यु प्रत्येक मनुष्य के शिरपर सवार है, जो मनुष्य लाखों तोपें अपने शत्रुओं के वास्ते रखते हैं वह भी मृत्यु के पंजे से बच नहीं सकते, जिनके पास बहुतसी बंदूक तोप

और डायनामेट के गोले स्थित हैं वह मृत्यु की बराबरी नहीं करसकते जिन्हों ने बडी २ ढाल तलवार किर्च तीर और कमान शत्रुओं से बचाने के वास्ते सहायक बना रखते हैं मौत के सामने सब निष्कार्य हैं मृत्युके भय से कोई मनुष्य जबतक नहीं बचसकता हैकि तब तक उसको अविद्या और विद्या के स्वरूप को ठीक २ नहीं समझले—अतः अविद्या का प्रथमावयव अनित्य को नित्य मानना है उसके नाशका कारण मृत्यु का भय है।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

—○○※○○—

ओ३म्

ट्रेक्ट नम्बर ५

# अविद्या का दूसरा अंग

—०:※:०—

जिसको

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती जी ने रचा और

प्रबन्धकर्त्ता दयानन्द ट्रैक्ट सोसाइटी ने

महाविद्यालय मैशीन प्रेस ज्वालापुर में छपवाया.


मिलने का पता—

दयानन्द ट्रैक्टसोसाइटी

(दफ्तर) पुलिस के सामने

बाजार हरिद्वार.

५००० प्रति ]                [ मूल्य ३ पाई.

॥ ओ३म् ॥

# अविद्या का द्वितीय अंग ।

अविद्या का प्रथम अंग तो ज्ञात होगया-कि अनित्य को नित्य मानना ही अविद्या है अब उसका दूसरा अवयव [ हिस्सा ] बतलाते हैं कि-अशुद्ध शरीर को शुद्ध मानना-प्रत्येक मनुष्य जो मोह [ मोहब्बत ] में फंसता है केवल एक सुन्दरत्व को देखकर । क्या कोई शरीर शुद्ध कहलासकता है कदापि नहीं क्योंकि शरीर के प्रत्येक अवयव से सिवाय मलों के और कुछ नहीं निकलता-चक्षु सब से प्रकाश वाली और शुद्ध है उस में भी जरासी मिट्टी पड़जाने से जीवात्मा बहुत दुःख मानता है और जब देखोगे उस में से मल ही [ ढीड ] निकलता हुवा देखोगे यदि उसको तोडदो तो मांस और रक्त ही निकलता है मनुष्यों के शरीर का कौनसा अवयव है जिस के आभ्यन्तर से निकली हुई वस्तु को मनुष्य शुद्ध मानता हो रक्त को प्रत्येक मनुष्य अशुद्ध मानता है मांस भी अशुद्ध है ही, मेद और अस्थी भी शुद्ध नहीं निदान शरीर में सब ही अशुद्ध वस्तु अर्थात् घृणित पदार्थ भरेहुवे हैं कोई भी स्वच्छ पदार्थ नहीं-मनुष्य

नित्य जल से धोकर ऊपर की त्वचा को स्वच्छ करलेता है परन्तु आभ्यन्तर से मल मूत्रादिकों को कोई भी नहीं धोता है ऐसी दशा में शरीर के स्वच्छ होने की प्रतिज्ञा करना कैसी मूर्खता है--क्या शूद्र का शरीर अशुद्ध और ब्राह्मण का शुद्ध है नहीं २ महाराज शारीरिक दशा में तो ब्राह्मण और शूद्र एक हैं सब ही के शरीरों में वही भ्रष्ट पदार्थ भरेहुये हैं जिस स्त्री को मनुष्य सुन्दर जानकर उस के मोह में प्राण तक देदेता है यदि विचार पूर्वक देखा जावे तो यही ज्ञात होगा कि सुवर्ण की घडी में पाखाना भरा हुवा है केवल बाह्य बनावट ने उसको सुन्दर बना रक्खा है वरन उस के आभ्यन्तर ऐसी वस्तु भरी हुई है कि जिस के स्पर्श से मनुष्य अपने हस्तपाद को बार २ धोता है चाहे कोई बाह्य दशा में कैसा ही सुन्दर हो--परन्तु मूल में निर्बलता होने से बच नहीं सकता जब शरीर की ऐसी गती है तो मनुष्य क्यों इससे मोह करता है केवल अविद्या के कारण से वरन कोई विद्वान् मनुष्य ऐसी मलीन वस्तु को स्पर्श करना भी अच्छा नहीं समझता--अविद्या के गहरे चक्र में गिरकर जीव की बुद्धि विनाश को प्राप्त होकर मनुष्य को धर्माधर्म का ज्ञान भी भुलादेती है यहां तक ही खराबी नहीं हुई किन्तु इस अविद्या के कारण से ऐसे मांस को कि जिसकी दुरगंध से मकानों में ठैरना कठिन ज्ञात होता था मनुष्यों ने उसको भी खुराक मान लिया है कोई नहीं विचारता कि भेड का संपूर्ण श-

और जिस खुराक से बना है वह भक्ष मनुष्यों की दृष्टि से गिरा हुवा है परन्तु मनुष्य उसको भी आनन्द से भक्षण करते हैं जब तक वह अच्छी दशा में है तब तो उसको अच्छा नहीं जानते परन्तु जब उस में दुरगन्ध आने लगजाती है तो वह मद्य बन जाता है और मनुष्य उसको पीने के वास्ते अधिक मूल्य पर भी लेते हैं।

निदान कि मनुष्यों ने अविद्या के कारण प्रत्येक भ्रष्ट से भ्रष्ट वस्तुको भी स्वच्छ समझकर अपनी आत्मिक दशा का विनाश करबैठे हैं जिसको देखकर विद्वान् लोग बहुत ही घबराते हैं यदि किसी का हस्त रक्त से स्पर्श होजावे तो वह बीसियों बार हाथ को मिट्टी से धोता है परन्तु रक्त के भरे हुवे मांस को भक्षण के लिए बिचारे जीवों की मन्या नाडियों की चालको बन्द करदेते हैं अर्थात् वियोग कर डालते हैं प्रथम तो मनुष्यों का शरीर ही भ्रष्ट पदार्थों से भरा हुआ है परन्तु बहुत से मनुष्य कह बैठेंगे कि हमें तो मनुष्यों के शरीर में से दुरगंध नहीं आती यदि यह स्वच्छ नहीं होता तो दुरगन्ध अवश्य आती परन्तु आप को स्मरण रहे कि प्रथम तो दुरगन्ध उन पदार्थों में से आया करती है जो उनको कभी नहीं मिले—वरन आभ्यन्तर होने से अधिक समय तक जो गंध को गृहण करते हैं अतः उसकी ज्ञानशक्ती (तमीज) नहीं रहती और वह वस्तु अपने अनुसार होजाती है क्यों कि हम देखते हैं कि चर्मकारी मनुष्य

चमडा धोने वाले खटीक चर्म की गंध के इतने शत्रु नहीं होते जितने हम तुम और मांस के बेचने वाले [ कसाई ] मांस की दुर्गन्ध से नहीं घबराते कारण यही है कि उनकी इन्द्रियों में उन वस्तुओं के समीप रहने से आपस में ऐसा सम्बन्ध होजाता है कि उन में कोई भेद ज्ञान नहीं होता–

जिस प्रकार इस जाति के मनुष्य दुर्गन्ध से घृणा नहीं करते उन को अस्वच्छ पदार्थ भी स्वच्छ ज्ञात होते हैं यही दशा उन मनुष्यों की है जो रात्रीदिन शरीर को ही जीव [ रूह ] समझकर उस की रक्षा में लगे रहते हैं उनको यह विचार नहीं होता-कि जिस शरीर से प्रत्येक समय गंदगी के पदार्थ निकलते हैं वह शरीर किस प्रकार शुद्ध कहलासक्ता है–जब कि ऐसे ज्ञान के हेतु से स्थिती होजावे कि प्रत्येक शरीर गंदगी का थैला है चाहे वह थैला चमकदार मखमल का हो अथवा सनकी बोरी का परन्तु उस थैले के अन्दर दुरगंधित पदार्थ हैं तो वह कभी इस से मोह नहीं करसकता और कभी सुन्दर वस्तु को देखके उसपर मस्त ( दीवाना ) होसक्ता है क्योंकि वह जानता है कि यह सुन्दरता बाहर ही दृष्टिगोचर होती है; नकि आभ्यन्तर भी उस में कोई वस्तु ऐसी नहीं है कि जिस से मोह किया जावे यह चलती हुई गाडी जो प्रत्यक्ष में चमकीली ज्ञात होती है प्रत्येक मनुष्य को अपनी तरफ खैंच सकती है परन्तु जिस

मनुष्य को इसके कारण का ज्ञान है वह जानता है कि यह पदार्थ सब दिखावटी हैं।

जो मनुष्य भक्ष्यादिक की दुरगंधी को अच्छी तरह से जानते हैं—वह कदापि ऐसे अन्न के भक्षण का श्रम न करेंगे परन्तु जिन मनुष्यों को अविद्या के कारण से भ्रष्ट शरीर को स्वच्छ होने का निश्चय होजाता है वह शारीरिक उन्नति को समाजिक और आत्मिक उन्नति के बराबर समझते हैं नहीं २ किन्तुः इन से अधिक मानते हैं वह मनुष्य गंदी वस्तुओं को किस प्रकार अशुद्ध कहसक्ते हैं, और किस प्रकार उनके विचार से रुकसक्ते हैं संसार में यदि विचार पूर्वक देखा जावे तो बहुत थोडे मनुष्य ऐसे मिलेंगे जो अविद्या के फंदे से पृथक हैं अविद्या के बल और पराक्रम ने संपूर्ण संसार को चक्र में डाल रक्खा है यद्यपि हजारों उपदेशकों के उपदेश होने पर भी जगत् में पापों का बल अपनी संपूर्ण शक्ती से कर्म कर रहा है, संसार की कोई शक्ती ऐसी नहीं है कि इसका निरोध करसके

गवरनमिंट ( राजसभा ) अधर्मियों को दंड देकर अर्थात् हिंसकों को वध का चोरों को कारागार इत्यादिक दंड देकर निदान कि हजारों प्रकार से यत्न करती हुई यह इच्छा प्रकट करती है कि मेरे राज्य में मनुष्य धार्मिक और सच्चे रहें और पापों का होना नितान्त छूट जावे परन्तु जहाँ तक पता मिलता है यही पाया जाता है कि पापों का होना इस प्रकार बढ़रहा

है कि जिस प्रकार वर्षा ऋतु में नदी की वृद्धि होती है—जहां पहिले एक स्थान पर व्यवहार होते समय दस्तावेज और मुकद्दमे बाज़ी का भय नहीं था वहां पर आज हज़ारों प्रकार के प्रबन्ध होनेपर नहीं नहीं किन्तु रजिस्ट्री और तमस्सुक के होने से यह झगडा समाप्त नहीं हुआ—भाई का भाई शत्रु होगया रात्री दिन राजसभा में झूंठ गवाह और स्वार्थी वकीलों की चांदी दृष्टि गोचर होती है प्रत्येक मनुष्य के मन में स्वार्थ ने अपना घर बनालिया है और अहंकार भी इतना चढरहा है कि अपने आपको न जाने कि क्या (आकलातून) समझरक्खा है क्योंकि अविद्या के कारण वह नहीं जानता कि उसकी सत्ता क्या है जिस शरीर के लिये वह इतना झगडा कररहा है वह एक मिनट में विनाश को प्राप्त होनेवाला है आजकल की शिक्षा अविद्या को दूर करने के अतिरिक्त और भी अधिक वृद्धि को प्राप्त करादेती है बालक पाठशाला (स्कूल) में पीछे जाता है उसको तन की रक्षा का स्मर्ण प्रथम होता है छोटी सी अवस्था में बिना छाता और ऐनक के कार्य नहीं चल सकता कोट बूट और चुरट तो ऐसे आवश्यकीय हैं कि उनको एक दिन न मिले तो सभ्यता की पुच्छ दूर होजाती है इस समय भारतवर्ष में अविद्या के द्वितीयाचक्र ने तो इतना बल प्राप्त करलिया है कि मनुष्य मूल से हजारों योजन दूर जापडे हैं क्या भारतवासियों ने शुद्धा शुद्ध का विचार नहीं

किया—क्या इस नियम का ज्ञान ही ऐसा नहीं किन्तु भारत-वासियों को प्रत्येक में शुद्धा शुद्ध का विचार लगाहुवा है परन्तु शोक इस बातका है कि इस उत्तम नियम का अर्थ उलटा समझलिया है भोजन करते समय शुद्धा शुद्धी का बहुत कुछ विचार है परन्तु वह सब बेढंगा है कि अविद्या के दूर करने के अतिरिक्त उसको बढ़ाने का कारण होगया है भारत में कानकुब्ज ब्राह्मण शुद्धी का बहुत अहंकार करते हैं उनकी भोजनादि में तो यह दशा है कि वह ब्राह्मण के हाथ की रोटी तक नहीं खाते हैं यही नहीं किन्तु आपस में भी भाई २ के हाथ की नहीं भक्षण करते परन्तु क्या उन्होंने भ्रष्ट पदार्थों का त्याग किया ( नहीं जी इन बातों को ओ३म् २ जपो ) नहीं २ किन्तु इन में तो मांस के भक्षण करनेवाले प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं किन्तु उन में जो शुद्ध होते हैं वह प्रायः मांसाहारी के अतिरिक्त मद्य को भी पान करते हैं काश्मीरी ब्राह्मण जो एक दूसरे के हाथ की बनी हुई रोटी नहीं खाते नहीं २ किन्तु पक-वान भी नहीं खाते वह भी तो मांस को चट करजाते हैं किंतु इन दोनों प्रकार के पंडितों में हजारों मनुष्य इन पदार्थों का भक्षण करना धर्म समझते हैं और अपने इष्ट देवताओं को अज [ बकरा ] बलिदान देते हैं नहीं २ किंतु प्राय मन्दिरों में भैंसों के कंठ पर शस्त्र रक्खा जाता है , काली कलकत्ते वाली का मंदिर जिस मनुष्य ने देखा होगा वह अच्छी तरह से जानता

है कि कहां तक इन विचारे पशुओं की हानी इस अविद्या के कारण से होती है पटियाले में विश्वपती नाथ महादेव के मन्दिर में हजारों भैंसे प्रत्येक वर्ष मारे जाते हैं विचारी बकरी और भेडों की क्या संख्या है विन्ध्याचल देवी के मंदिर में भी ऐसा ही हिंसा का बाजार गरम दृष्टि गोचर होता है वहां इस ही अविद्या के कारण से धर्म के स्थान में अधर्म करते हैं नहीं विचारते कि जिस दुर्गा को तुम माता कहते हो क्यों वह जगत में होने से इन बकरे भैंसों की भी तो माता होगी—क्या वह देवी है अथवा डायन है क्योंकि डायन अथवा सर्पनी के अतिरिक्त और कोई माता अपने बच्चों का भक्षण करना नहीं चाहती है सामान्य दृष्टान्त प्रसिद्ध है कि—

डायन भी तीन गृह त्याग देती है न ज्ञात कि क्यों मनुष्य इत्यादि पर कलंक लगाते हैं अजी महाराज केवल अपनी अविद्या को सिद्ध करने के लिये अभी आप ज्वाला मुखी के मन्दिर में चले जावें वहां भी जीवों की हिंसा ही होती पावेंगे यही दशा कांगडे में दृष्टी गोचर होती है भला ऐसी उत्तम जगह में जहां पूर्व बडे २ विद्वान रहते थे और इस समय भी जो जाते हैं वह धर्म का संकल्प करके पुनः क्यों ऐसे खराब कार्य होते हैं केवल अविद्या के कारण से वरन कोई विद्वान मनुष्य ऐसी बातों को मान नहीं सकता है-

यद्यपि इन दुराचारों में स्वार्थ का भी पूर्ण भाग है परन्तु स्वार्थ तो पुजारी और तीर्थ के ब्राह्मणों का ही कहला सकता है बिचारे यात्री जो दूर दूर से बहुत सा रुपया व्यय करके बहुतसी आपत्ती उठाकर घरके कार्य और धन्धों को छोड कर वहां तक जाते हैं वह तो अपने ज्ञान में धर्म करने जाते हैं यदि उनको ज्ञान होता कि जीवों की हिंसा जिसको हम अविद्या से धर्म समझ बैठे हैं महापाप है न तो उन्हों ने धर्म शास्त्र की शिक्षा पाई और नहीं सु विद्वानों का सत्संग किया है यदि वह गए तो उन साधुओं के पास जो यात्री वाममार्गी होते हैं अथवा अहम्ब्रह्म भी होते हैं इन दोनों प्रकार के साधुओं के पास तो धर्म की शिक्षा मिल ही नहीं सक्ती क्योंकि वाममार्गी तो अधर्मको भी धर्म मानता है और नवीन वेदान्ती के विचार में जीव ही ब्रह्म है जिसके लिये किसी धर्म की आवश्यका ही नहीं है।

इन के अतिरिक्त वैरागी आदिक तो बिलकुल अपठित होते हैं यही कारण है कि संपूर्ण वह जातियां कि जिनके हृदय में दया भी होती है वैदिक धर्म से पृथक होकर जैन धर्म में मिलित हुये यदि इस प्रकार के हिंसक धर्म न चल जाते जोकि वेदों के विरुद्ध शिक्षा देरहे हैं तो कदापि आर्यवर्त्त में बोद्ध जैनादिक नास्तिक मत नहीं चलते और नहीं उन के आचार्यों को उन के चलाने की आवश्यकता ज्ञात होती अस्वच्छ पदार्थको

स्वच्छ जानने वाले वाममार्गिओं ने आर्यावर्त्त को बहुत कुछ हानी पहुँचाई क्यों कि मनुष्यों को धर्म के पंथ से हटाकर अधर्म के मार्ग में लगा दिया और आत्मिकोन्नति के अतिरिक्त शारीरकोन्नति की पुकार मचा दी और कहने लगे-

**यावज्जीवेत् सुखेञ्जीवेन्नास्ति मृत्यरगोचरः**

**भस्मिभूतस्य देहस्य पुनरागम नमकुतः**

अर्थ—जबतक जीवे सुख से जीवे क्यों कि प्रत्येक मनुष्य को मृत्यु के पंजे में आना है और भविष्यत के लिए धर्माधर्म कोई वस्तु नहीं है क्यों कि जो शरीर भस्म होगया वह आगे को दूसरी बार कर्मों का फल भोगने के वास्ते किस प्रकार आ-सकता है इस प्रकार के अशुद्ध शरीर को शुद्ध मानने वालों ठीक बातों को न जानकर संसार में ऐसी अविद्या फैलादी है. और मनुष्यों में धर्म के नाश होजानेसे लिप्सा (हिर्स) इतनी बढ़गई है कि जिसके कारण से मनुष्य अपनी इच्छा पूर्ण करने के वास्ते अधर्म पर तत्पर होगये—त्रिजयसिंह ने विश्वासघात करके पृथ्वीराज को मरवाया राना सुखदेव राना सांलगा का संपूर्ण कार्य विगाड़ा—जयपुर और जोधपुर के राजपूत महाराजाओं ने कि जिन सुकुल राजपूतों में प्रतिष्ठा का

गंडा समझा जाता है यवनमती राजाओं को लड़की देदी धर्म्म के खोने का बट्टा लगा दिया ऐसा क्यों मनुष्यों ने सांसारिक प्रतिष्ठा और शरीरों के भोगों को धर्म और कर्म से अधिक समझा था उन के सामने धर्म एक तुच्छ वस्तु थी. निदान कि वाममार्ग ने भारतवर्ष को इतने कलंक लगाये हैं कि जिनके लिखने के लिये इस लघु ट्रेक्ट में स्थान कहां मिल सक्ता है।

अजी वाममार्ग क्या है—वाम शब्द का अर्थ उलटा और मार्ग का रास्ता है अर्थात् मुक्ती का उलटा रास्ता सर्वदा मिथ्या मार्ग पर वही चलते हैं कि जिन को रास्ते का ज्ञान न हो और ज्ञान का ठीक २ न होना यही अविद्या है अतः आर्यावर्त्त में वाममार्ग का कारण यह अविद्या का दूसरा अवयव है अर्थात् शुद्ध वस्तु को अशुद्ध जानना जब तक मनुष्य जाती इस भ्रष्ट शरीर को स्वच्छ समझे रहेंगे तबतक यह अविद्या दूर नहीं होसक्ती और नहीं उन के हृदय में आत्मा की उन्नति का विचार आसकता है क्यों कि पश्चिम की तरफ चलने वाला पूर्व के पदार्थों को देख नहीं सकता जब तक कि वह पश्चिम की तरफ से पूर्व की तरफ न देखे—

इस ही प्रकार शारीरिक और आत्मिक उन्नति के दो विरुद्ध मार्ग हैं जो मनुष्य शारीरिक उन्नति में लगे हुवे हैं वह आत्मिक उन्नति से दूर भाग रहे हैं और जो आत्मिक उन्नति की चेष्टा करते हैं वह शरीर की कुछ परवाह नहीं करते और जो मनुष्य

दोनों उन्नति चाहते हैं वह दोनों मार्ग से गिर जाते हैं जिस प्रकार एक मनुष्य देहली में है वह कलकत्ते भी जाना चाहता है जो कि पूर्व में है और पंजाब भी तो नित्य एक मील पूर्व को जाता है और एक पश्चिम को और कुछ कालान्तर के पश्चात् अपने को देहली में ही देखता है न तो वह कलकत्ते आसका और नहीं पंजाब में परन्तु हमारे पाठकगण कह उठेंगे कि यदि यही दशा है तो आर्यसमाज के छठे नीयम में यह क्यों लिखा है कि शारीरिक समाजिक और आत्मिक उन्नति करना क्योंकि तुम शारीरिक उन्नति के विरुद्ध कह रहे हो परन्तु स्मर्ण होकि इस प्रकार की तर्क करने वालों ने स्वामी जी के नीयम को समझा नहीं क्योंकि नीयम यह है कि संसार का उपकार करना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश है अब उस की व्याख्या करते हैं कि संसार का क्या उपकार किया जावे सो उसके उत्तर में कहते हैं कि जो मनुष्य अनाथ और वृद्ध हो अपनी शारीरिक दशा में निर्वल होने से रक्षा में तत्पर है उनको भोग्य पदार्थादिक की सहायता देकर शारीरिक उन्नति करना और जो मनुष्य अविद्या के कारण से अपनी आत्मा को निरवल जानते हैं और उनके अन्दर इस प्रकार की शक्ति ( होसला ) नहीं है कि वह अच्छे कार्य करसकें तो उनको धर्मोपदेश देकर अविद्या के जाल से निकाल कर उनकी शक्तियों का दर्शन कराने से दृढ बनाना यह आत्मिक उन्नति है और जो मनुष्य मतमतान्तरों के झगडों से-भाई होने पर भी आपस में झगडे रहे हैं उनको वैदिक

धर्म की पवित्र शिक्षा से इन वाद विवादों से हटा कर परमात्मा की सच्ची भक्ती में लगाना यह सामाजिक उन्नति है क्योंकि अब सब मनुष्य परमात्मा के सच्चे सेवक और वैदिक धर्म के अनुसार काम करने वाले हो जावें तो जगत में कोई भी खराबी नहीं रहती और मनुष्य जाती के जो अविद्या के कारण से टुकड़े होकर प्रत्येक मनुष्य अपने आप को निर्बल समझ बैठा है यहां तक कि बहुत मनुष्य केवल रोटी का उत्पन्न कर लेना ही बहुत कुछ समझ रहे हैं वह नहीं जानते कि हम मनुष्य जाती से पशु बन रहे हैं क्योंकि भविष्यत का प्रबन्ध करना मनुष्य का धर्म है और वर्तमान में अपने पास हो उस पर ही सन्तोष करना पशुओं का धर्म है क्योंकि मनुष्य सर्वदा आगे बढ़ने की इच्छा रखता है हमारे विचार में तो जब तक अविद्या का द्वितीय अवयव संसार में स्थित रहेगा तब तक कोई मनुष्य वह उन्नति कि जिस की पूर्व के ऋषी और विद्वान् भी प्रशंसा करते थे नहीं हो सकता और जो मनुष्य इस अविद्या से पृथक होजाते हैं वह अपने कामों को बड़े प्रबल से कर सकते हैं और उन में से एक २ मनुष्य लाखों मनुष्यों को सुधार सकते हैं आओ आर्य गण ! हम सब मिल कर परमात्मा से प्रार्थना करें कि हमारे हृदय से अविद्या के इस अंग को ढूंढने में हमें सहायता दे आओ प्रयत्न करें कि यह हमारी आत्मा को दुर्बल बनाने वाली हम से दूर चली जावे और हम जिस आनन्द को प्राप्त करना चाहते हैं उस को प्राप्त कर लेवें ॥ ओ३म् शम्